71. अपने अज्ञान को जानना सच्चा ज्ञान है

1. *To know non-knowledge*
   is the highest good.
   Not to know what knowledge is is a kind of suffering.

2. *Only if one suffers from this suffering*
   does one become free of suffering.
   If the Man of Calling does not suffer
   it is because he suffers of this suffering:
   therefore he does not suffer.

अनुवाद

1. *अज्ञान को जानना सर्वोत्तम है।*
   ज्ञान क्या है, इसे न जानना एक प्रकार की व्याधि है।

2. *जब कोई इस व्याधि से पीड़ित होता है,*
   केवल तभी वह इससे मुक्त होता है।
   संत पीड़ित नहीं होते क्योंकि इस व्याधि से वे पीड़ित हैं।
   अतएव वे पीड़ित नहीं हैं।

भावार्थ—1. अपने अज्ञान को जानना उच्चतम बात है। ज्ञान क्या है, यह न जानना एक तरह का रोग है।

2. जब कोई इस रोग से पीड़ित होता है, सिर्फ तभी वह इस कष्ट से छूटता है। संत दुखी नहीं होते, क्योंकि वे इस रोग से पीड़ित हैं। इसलिए दुखी नहीं।

भाष्य—अज्ञान को जानना सर्वोत्तम है। संसार प्रकृति के नियमों से चलता है। नियम संसार से अभिन्न है। इस तथ्य को न समझकर व्यक्ति-ईश्वर और दैवी कल्पना में पड़कर भ्रम में रहना अज्ञान है। अपने आत्मा को देह से भिन्न, निर्मल, शाश्वत न समझना अज्ञान है। देहाभिमान एवं मनोविकारों में पड़े रहना अज्ञान है। कोई आकाशीय शक्ति हमें बंधनों से मुक्त कर देगी, यह धारणा अज्ञान है। मन का उद्वेग मात्र अज्ञान है। अपने इन सारे अज्ञानों को जान

लेना, समझते रहना और मिटाते रहना ऊंची बात है। दुखी होना अज्ञान है। जो इसे समझ लेता है वह दुखों से मुक्त हो जाता है।

सच्चा साधक निरंतर शांतचित्त होकर अपने अज्ञान को समझने का प्रयास करता है। जो सब समय अपने अज्ञान को समझता है, वह अज्ञान से मुक्त होता जाता है, इसलिए दुखों से मुक्त होता जाता है। साधक जितना अपना अज्ञान समझता जाता है, उतना विनम्र होता जाता है। अज्ञान को समझ लेने का अर्थ ही है उसे छोड़ देना।

ज्ञान क्या है, इसे न जानना एक प्रकार की व्याधि है। देख-सुनकर तथा पढ़-गुन कर लोग कुछ जानकारियों का संग्रह कर लेते हैं। इसे वे ज्ञान मान लेते हैं, और इसके बल पर वे उन बातों का भी ज्ञानी होने का दावा करते हैं जिन्हें वे बिलकुल नहीं जानते। यह एक प्रकार का मानसिक रोग है। अपने अज्ञान को समझना ज्ञान है। परंतु हम जानकारियों को ज्ञान मान लेते हैं और उन जानकारियों के बल पर अपने अज्ञान को छिपाते रहते हैं जो हमारे लिए मनोव्याधि बन जाता है।

छूटने वाली वस्तुओं में मोह करना अज्ञान है। मनोविकारों के अधीन होना अज्ञान है। उद्वेगों में पड़ा अशांत रहना अज्ञान है। निर्विकल्प समाधि में न जाना अज्ञान है। इन अज्ञानों को समझकर इनसे अपने को पूरा मुक्त कर लेना ज्ञान है। इस यथार्थ ज्ञान को न समझकर जानकारियों के बौद्धिक संग्रह को ज्ञान मानना मानसिक व्याधि है।

जब कोई इस व्याधि से पीड़ित होता है, केवल तभी वह इससे मुक्त होता है। उपर्युक्त व्याधि से कौन मुक्त होता है? जो इससे पीड़ित होता है। जिसे लगता है, ''मैंने शास्त्रीय ज्ञान, बौद्धिक ज्ञान, वाचिक ज्ञान को जो ज्ञान मान रखा है, यह मेरे लिए पतन का मार्ग है। यह मेरे में केवल अहंकार पैदा करता है, मेरे दोषों को बढ़ाता है। इससे मेरा कल्याण होने के बदले अकल्याण होता है।'' फिर ऐसी वेदना होने पर वह इस ज्ञान कहे जाने वाले अज्ञान से अपने को मुक्त करने में लग जाता है और वह अपने विषयासक्ति जनित अज्ञान को देखने लगता है, और फिर वह यथार्थ ज्ञानी होता जाता है; क्योंकि वह विषयासक्ति एवं मन-इंद्रियों की गंदी आदतों को छोड़ता जाता है। ईश उपनिषद् के ऋषि ने मार्मिक बात कही है, ''जो अविद्या की उपासना करते हैं, वे अंधकार में गिरते हैं, और जो विद्या में आसक्त हैं, वे उससे भी अधिक अंधकार में गिरते हैं।''[1] अज्ञानी तो भटकता ही है, ज्ञानी कहलाने वाला अधिक

---

1. **अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।**
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः॥ ईश उपनिषद, 9॥

भटकता है। अज्ञानी के सुधार की संभावना है, परंतु ज्ञान के अहंकारियों के सुधार की कोई संभावना नहीं है। परंतु जो अपने इस ज्ञान के अहंकार से पीड़ित हो जाता है, और उसके मन में दृढ़ निर्वेद एवं ग्लानि होती है, तब वह इस ज्ञान के अहंकार को छोड़कर अपने अज्ञान को, मनोविकारों को देखकर दूर करने लगता है और फिर सुखी हो जाता है।

संत पीड़ित नहीं होते, क्योंकि इस व्याधि से वे पीड़ित हैं। अतएव वे पीड़ित नहीं हैं। संत भी मनुष्य ही हैं। उन्हें भी पहले अपनी जानकारियों का घमंड रहा होगा, परंतु उन्होंने इसकी सच्चाई देखी और उनको इसके विषय में ग्लानि हो गयी। वे अपने बौद्धिक ज्ञान के अहंकार से पीड़ित हो गये, इसलिए उन्होंने इसको बिलकुल छोड़ दिया। वे अब अपने अज्ञान को समझने लगे। वे अपने मन को देखने लगे कि कब-कब इसमें विकार एवं उद्वेग आते हैं और वे उन्हें दूर करने में लग गये, उन्हें पूरा नष्ट करने में लग गये, और दीर्घकाल अभ्यास कर उन्होंने अपने मन को निर्विकार कर लिया, वासनाहीन तथा अहंकार-मुक्त कर लिया। इसलिए वे अब पीड़ित नहीं होते।

72. संत निर्मान, निष्काम और आत्मसंतुष्ट होते हैं

1. *When people do not fear what is terrible,*
   then the great terror comes.

2. *Do not make their dwellings narrow*
   nor their life vexed.
   For it is because of this
   that they do not live in narrowness
   that their life does not become vexed.

3. *Thus also is the Man of Calling:*
   He knows himself but does not want to shine.
   He loves himself but does not seek honour for himself
   He removes the other and takes this.

अनुवाद

1. *जो भयावह है, उससे जब लोग नहीं डरते,*
   तब उन पर बड़ी विपत्ति आती है।

2. *लोगों के निर्वाह धंधे को संकुचित न करो,*
   न ही उनके जीवन में परेशानी बढ़ाओ।
   ऐसा करने पर,
   वे संकुचित होकर नहीं रह जाते,
   और उनका जीवन कठिन नहीं रहता।

3. *संत भी इसी प्रकार करते हैं,*
   वे अपने को जानते हैं, किंतु चमकना नहीं चाहते।
   वे अपने से प्रेम करते हैं, किंतु अपने लिए सम्मान नहीं चाहते।
   वे दूसरे का निषेध एवं इसको ग्रहण करते हैं।

भावार्थ—1. जो सचमुच भयदायक है, उससे भय न करने से और उससे दूर न होने से बड़ी भारी विपत्ति आती है।

2. दूसरों के जीवन-निर्वाह के व्यवसाय को चोट पहुंचाने की चेष्टा न करो और उनके जीवन में उलझन डालने का प्रयास न करो। यदि दूसरों को सुविधा दी जायेगी, तो वे दुखी नहीं होंगे और उनका जीवन उलझन भरा नहीं रहेगा।

3. संत की रहनी भी ऐसी ही होती है। वे स्वयं के महत्त्व को समझते हैं, परंतु स्वयं को लोगों में प्रदर्शित करना नहीं चाहते। वे आत्म-रत होते हैं, अतएव वे अपने माने गये भौतिक नाम-रूप के लिए सम्मान नहीं चाहते। वे अन्य का त्यागकर आत्म-कल्याण का काम करते हैं।

भाष्य—जो भयावह है, उससे जब लोग नहीं डरते, तब उन पर बड़ी विपत्ति आती है। सबसे बड़ा भयदायक है, अपने मन का अहंकार। और जब इससे मनुष्य नहीं डरते, अपने मन के अहंकार से प्रेम करते हैं, तब वे बड़ी भारी विपत्ति में फंस जाते हैं। अपने अहंकार में ठेस लगते ही वे भभक पड़ते हैं। यदि उसे नहीं त्यागा गया, तो आदमी ऐसी दुखद उलझन में पड़ जाता है कि उससे उबरना कठिन होता है।

एक जमीन जो उस समय मुश्किल से पांच सौ रुपये की होगी, उसको लेकर दो पक्ष विवाद में पड़ गये। मुकदमा शुरू हो गया। उसको लेकर इतना कलह हुआ कि दोनों पक्ष एक दूसरे की जान लेने के लिए तत्पर हो गये। बारह वर्ष मुकदमा चलने के बाद मेरा वहां जाना हुआ। मैंने जमीन देखी और कहा, ''यह तो मुश्किल से पांच सौ रुपये की होगी। इसके लिए बारह वर्षों से तुम लोग मुकदमा लड़ रहे हो, एक दूसरे से कट्टर शत्रुता साध रहे हो, पानी की तरह रुपये बहा रहे हो, यह कौन समझदारी है?'' जो पक्ष उपस्थित था, उसने बड़े रोब से कहा, ''साहब! मुकदमा जमीन का नहीं है, बात का है।'' यह 'बात' क्या है? अहंकार।

युधिष्ठिर और दुर्योधन का जुआ खेलना उनका अहंकार था और अंततः युद्ध करना उनका अहंकार था। यादव-वंश का द्वारका में आपस में कटकर मर जाना उनके अहंकार का परिणाम था। लंका का घोर युद्ध अहंकार का फल था। महान कहा जाने वाला शैतान सिकंदर का विश्व-विजय के नाम पर निरपराध लोगों पर हमला और मार-काट, हिटलर आदि द्वारा घोर रक्तपात और अपना भी उसमें विध्वंस अहंकार का परिणाम था।

जब परिवार, समाज या किसी भी समूह में किसी बात को लेकर विवाद शुरू होता है और उसमें दोनों पक्ष के लोग तन जाते हैं, तो यह उनके अहंकार का परिणाम होता है। यदि वे अहंकार नहीं छोड़ते, तो उनका संघ टूट जाता है और उनके द्वारा किया जाने वाला कार्य नष्ट हो जाता है। अंततः दोनों पक्षों का पतन होता है।

अहंकार झूठा है। जो उसको सर्वथा छोड़ देता है, वह विपत्ति से बच जाता है और जो उसके भंवर में पड़ जाता है वह भयंकर विपत्ति में पड़ जाता है। अहंकार हारता है, निर्हंकार विजयी होता है। पूर्णतया झुक जाने वाला निश्चित सुख भोगता है और अहंकारी सदैव उलझा हुआ मन के ताप में जलता रहता है।

लोगों के निर्वाह-धंधे को संकुचित न करो, न ही उनके जीवन में परेशानी बढ़ाओ। संत लाओत्ज़े यहां शासकों को राय देते हैं कि तुम प्रजा के निर्वाह-धंधे में कठिनाई न उत्पन्न करो। उन्हें सरलता से अपने धंधे करने दो। उनकी जीवन-यात्रा में अन्य भी कोई कठिनाई न उत्पन्न करो।

ऐसा होने पर वे संकुचित होकर नहीं रह जाते, और उनका जीवन कठिन नहीं रहता। यदि शासक की तरफ से प्रजा को सरलता से सुविधा दी जाये, और उन पर अधिक प्रतिबंध न लगाया जाये, तो उनके धंधे संकुचित न रहकर विकसित होंगे और उनके जीवन-निर्वाह में कठिनता नहीं उत्पन्न होगी।

शासक प्रजा के लिए सरल व्यवस्था देने में प्रसन्नता रखे और प्रजा की सेवा करने में संतुष्ट रहे; वह भोगी और क्रूर बनकर अपने को प्रजा की दृष्टि में चमकाना न चाहे।

संत भी इसी प्रकार करते हैं, वे अपने को जानते हैं, किंतु चमकना नहीं चाहते। संत की अपनी अंतर्मुखता की रहनी होती है जिसमें निरंतर अखंड आनंद का निर्झर बहता है। यह उनका निरंतर का उपभोग है, अनुभव है। परंतु इसको लेकर वे अपने को लोगों में प्रदर्शित करने की कामना नहीं रखते।

सद्गुरु कबीर कहते हैं, "जब मन अतींद्रिय शाश्वत आत्मिक-सुख में निमग्न हो गया, तब क्यों बोले? हीरा मिल गया, उसे गांठ में बांध लिया। अब उसे बार-बार खोलकर लोगों को दिखाने की क्या आवश्यकता? अपने उथलेपन में दूसरे से अपनी तुलना करके उससे अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करने की चेष्टा थी। अब पूरा पा गया, मन पूर्ण आत्मतृप्त हो गया, अब दूसरे से अपनी तुलना क्यों करे? मनोवृत्ति कलवारिन अनतौल शांति-रस की मदिरा पी गयी, इसलिए वह अपने आप में मस्त हो गयी। हंस स्वच्छ, विशाल मानसरोवर में पहुंच गया, अब वह कीचड़ भरे तालतलैयों में क्यों डोलता फिरे? आत्मा अपने निर्मल असंग स्वरूप में निमग्न हो गया, अब वह राग-द्वेष के कीचड़ में क्यों भटके? मेरा प्रियतम मेरे में है। अब नेत्र खोलकर दुनिया की झूठी चमक-दमक में क्यों उलझे? कबीर साहेब कहते हैं, परमात्मा तिल की ओट में छिपा था और भ्रम कट जाने पर वह मिल गया। स्वयं को स्वयं खोज रहा था, सद्गुरु ने बोध की दृष्टि दी और लक्ष्य स्वयं पर गया और पा गया।" मूल वचन इस प्रकार है—

मन मस्त हुआ फिर क्यों बोले॥ 1॥
हीरा पायो गाँठ गाँठियायो, बार-बार वाको क्यों खोले॥ 2॥
हलकी थी तब चढ़ी तराजू, पूर भया तब क्यों तोले॥ 3॥
सुरति कलारी भयी मतवारी, मदवा पी गयी बिन तोले॥ 4॥
हंसा पायो मानसरोवर, तालतलैया क्यों डोले॥ 5॥
तेरा साहेब है घट भीतर, बाहर नैना क्यों खोले॥ 6॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, साहेब मिल गये तिल ओले॥ 7॥

वे अपने से प्रेम करते हैं, किंतु अपने लिए सम्मान नहीं चाहते। संत संसार से पूर्ण निर्मान और निष्काम होकर निरंतर आत्मसंतुष्ट, आत्मरत एवं आत्मतृप्त रहते हैं। यही उनका अपने से प्रेम करना है। उनकी दृष्टि में शरीर के नाम-रूप व्यर्थ हो जाते हैं। लोक में सम्मान नाम-रूप का ही होता है, अतएव अपने माने गये शरीर तथा उसके नाम-रूप का संत सम्मान नहीं चाहते। जो सत्य में निरंतर लीन है वह झूठ में क्यों प्रेम करे? आत्मा सत्य है, शरीर झूठ है। आत्मलीन व्यक्ति पूरे संसार से निष्काम हो जाता है।

वे दूसरे का निषेध एवं इसको ग्रहण करते हैं। अहंकार, दादागीरी, दूसरों को अड़चन में डालना, अपने माने गये शरीर के नाम-रूप को प्रदर्शित करना और उनके लिए सम्मान चाहना—इन सबका संत त्याग करते हैं और निर्मानता, निष्कामता, सरलता, पर-सेवा, सहृदयता, आत्मज्ञान और आत्मसंतुष्टि ग्रहण करते हैं।

73. विश्व-नियम के जाल से कुछ बाहर नहीं

1. *Whosoever shows courage in daredevilry*
   will perish.
   Whosoever shows courage without daredevilry
   will stay alive.
   Of these two the one brings gain,
   the other harm.
   However, who knows the reason
   why Heaven hates one?

2. *Thus also is the Man of Calling:*
   He sees the difficulties.
   The DAO of Heaven does not quarrel
   and yet has the gifts necessary to be victorious.
   He does not speak
   and yet he finds the right answer.
   He does not beckon
   and yet everything comes of itself.
   He is tranquil
   and yet is he competent in planning.
   Heaven's nets are wide- meshed
   but they lose nothing.

अनुवाद

1. *दुस्साहस दिखाने में जो वीर बनता है,*
   वह रगड़ जाता है।
   जो बिना दुस्साहस दिखाये वीर है,
   वह सुरक्षित रहता है।
   इन दो में से एक लाभकारी है,
   दूसरा हानिकर।

फिर भी कौन जानता है,
कि स्वर्ग एक से घृणा क्यों करता है?

2. *संत इसी प्रकार होते हैं,*
वे कठिनाई देखते हैं।
स्वर्ग का ताओ कलह नहीं करता,
यद्यपि उसमें विजेता बनने की निश्चित शक्ति है।
यद्यपि वह बोलता नहीं,
तद्यपि वह सही जवाब पाता है।
यद्यपि वह संकेत नहीं करता,
तद्यपि सब कुछ स्वयमेव आता है।
यद्यपि वह शांत है,
तद्यपि उद्देश्य निर्धारित करने में समर्थ है।
यद्यपि स्वर्ग का जाल चौड़े छेदों वाला है,
तद्यपि उससे कुछ छूटता नहीं।

भावार्थ—1. दुस्साहस करने में वीर बनने वाला नष्ट होता है। जो सरल और विनम्र होकर सेवा करने में वीर है, वह सुरक्षित रहता है। इन दोनों में से पहले वाला हानि करने वाला तथा पीछे वाला लाभ करने वाला है। परंतु यह कौन समझता है कि अंतरात्मा बुरे कर्मों से घृणा क्यों करता है?

2. संत अंतरात्मा के विधान के अनुसार चलते हैं। वे अहंकारी रास्ते को कठिनाइयों से भरा समझते हैं। अंतरात्मा का विधान कलह नहीं करता, जबकि उसमें सर्वजयी होने की शक्ति है। यद्यपि वह बोलता नहीं, तथापि उत्तर पाता है। यद्यपि वह कुछ भेजता नहीं, तथापि उससे सबकुछ सहजतया आता है। यद्यपि वह शांत है, तथापि उसी से सब उद्देश्य निर्धारित होते हैं। यद्यपि प्रकृति-विधान का जाल चौड़े छेदों वाला है, तथापि उसमें से निकलकर कुछ बाहर नहीं जा सकता।

भाष्य—दुस्साहस दिखाने में जो वीर बनता है, वह रगड़ जाता है। साहस तो है, परंतु जो उसका प्रयोग इंद्रियों के भोगों में तथा दूसरों को सताने में करता है, वह नष्ट हो जाता है। अपने मन-इंद्रियों को चंचल करने में और दूसरों को सताने और लूटने में साहस करना दुस्साहस है। जो आदमी दुस्साहस दिखाता है, वह पिस जाता है, रगड़ जाता है। जो भोगों को भोगने में और दूसरों को दुख देने में वीर बनता है, उसका घोर पतन रखा-रखाया है।

जो बिना दुस्साहस दिखाये वीर है, वह सुरक्षित रहता है। जो अपने मन तथा इंद्रियों पर संयम करता है और दूसरे लुटते और पिटते हुए मनुष्यों को

लूटने और पीटने वाले आततायियों से बचाता है, वह सच्चा साहसी और वीर है। वह स्वयं सुरक्षित रहता है। जो अपने आप पर सदा संयम रखता है और दूसरों की सेवा करता है, वह सदैव सुरक्षित रहता, सुखी रहता तथा स्थिर आनंद का भोक्ता होता है।

इन दो में से एक लाभकारी है, दूसरा हानिकर। उपर्युक्त दो प्रवृत्तियों में से पहले वाला हानिकर है और पीछे वाला लाभकर। लंपटता और क्रूरता हानिकर है और संयम तथा सेवा लाभकर। कथन के शुरू में पहले वाला हानिकर है और दूसरा लाभकर परंतु पीछे की पंक्तियों में पहले वाला लाभकर तथा पीछे वाला हानिकर बताया गया है। यह केवल शैली का दोष है। वस्तुत: पहले वाला हानिकर है और दूसरे वाला लाभकर। हिंसा हानिकर है और अहिंसा लाभकर। अपने मन तथा इंद्रियों को लंपट करके स्वयं की हिंसा करना है और दूसरों को पीड़ा देकर उनकी हिंसा करना है। कर्ता के लिए यह दुखदायी रास्ता है। और अपने मन तथा इंद्रियों पर संयम करके अपने पर अहिंसा का बरताव करना है तथा दूसरों को दुखों से बचाने का काम करके उनके प्रति करुणा का बरताव करना कर्ता के लिए सुखद रास्ता है।

फिर भी कौन जानता है, कि स्वर्ग एक से घृणा क्यों करता है? मनुष्य का अंतरात्मा स्वभाव से शुद्ध है, मन-इंद्रियों के बाहरी विकारों से वह मलिन-सा लगता है। अतएव मूलत: शुद्ध अंतरात्मा स्वर्ग है, और यह हिंसा से घृणा करता है। परंतु इस पर कौन ध्यान देता है? कोई दुख नहीं चाहता, तो अपने और दूसरे को दुख देने की बात शुद्ध अंतरात्मा कैसे पसंद कर सकता है? परंतु इस तथ्य पर कौन ध्यान देता है? लोग अपने अंतरात्मा के स्वर को अनसुना कर असंयम और निश्शील बरताव करते हैं और इसके फल में दुख पाते हैं।

संत इसी प्रकार होते हैं। वे कठिनाई देखते हैं। संत सदैव स्वर्ग की बात सुनते हैं, अंतरात्मा की आवाज सुनते हैं और उसके अनुसार वे स्वयं पर संयम रखते हैं और दूसरों के साथ शील का बरताव करते हैं। वे असंयम और निश्शीलता के पथ की कठिनाई देखते हैं कि इस पथ में चलने से दुख है। अतएव वे सदैव अपने पर संयम और दूसरों के साथ शील का बरताव करते हैं।

स्वर्ग का ताओ कलह नहीं करता, यद्यपि उसमें विजेता बनने की निश्चित शक्ति है। स्वर्ग का ताओ अंतरात्मा का विवेक है। वह कलह नहीं पसंद करता। विवेक में विजेता बनने की स्थिर शक्ति है, परंतु वह सब तरफ से हार मानकर, विनम्र और निष्काम होकर सर्वजयी होता है। विवेक कलह करके, झगड़ा करके, विवाद करके विजेता नहीं बनता, अपितु मौन होकर, सबसे हारकर, सिर झुकाकर विश्वविजयी हो जाता है। इसका अभिप्राय यही है

कि विवेकवान अपने मन को भौतिक धरातल से ऊपर आत्मिक धरातल पर रखता है। उस स्थिति में निरंतर निवास करने वाले को कोई तर्क ही नहीं रह जाता। वहां विवाद कहां? भौतिक नाम-रूप में मोह होने से मनुष्य सब तरफ से हरक्षण चोट खाता रहता है, अतएव वह कलह में पड़ा रहता है। जिसको चोट लगने की जगह ही नहीं रह जाती, वह क्यों उद्वेगित होगा और क्यों कलह करेगा? चोट लगने की जगह अहंकार है।

यद्यपि वह बोलता नहीं, तद्यपि वह सही जवाब पाता है। स्वर्ग का ताओ, अंतरात्मा का विवेक बोलता नहीं है। उसमें से कोई बाहरी आवाज नहीं निकलती, परंतु उसे सब समय स्वयं से ही सही उत्तर मिलता है। सारा समाधान विवेक से होता है। इसीलिए विवेक रखने वाला कभी भटकता नहीं है।

यद्यपि वह संकेत नहीं करता, तद्यपि सबकुछ स्वयमेव आता है। स्वर्ग का ताओ, अंतरात्मा का विवेक कुछ ऐसा संकेत नहीं करता है कि मैं कुछ दे रहा हूं, परंतु जीवन-कल्याण की पूरी सामग्री उससे स्वत: आती है। जिसका अंत:करण विवेक से पूर्ण है, वह कभी दुखी नहीं होता। यही उसकी सर्वोपलब्धि है।

यद्यपि वह शांत है, तद्यपि उद्देश्य निर्धारित करने में समर्थ है। स्वर्ग का ताओ शांत है, विश्व-नियम शांत है, परंतु मनुष्य के जैसे शुभाशुभ कर्म होते हैं, उनके अनुसार वह कर्म-फल के लक्ष्य को निर्धारित करने में समर्थ है। विश्व-नियम कोई व्यक्ति एवं चेतन नहीं है, वह तो शाश्वत नियम है, स्वचालित ऋत है, किंतु उसका निर्णय गणित की तरह पूर्णत: तथ्य होता है।

यद्यपि स्वर्ग का जाल चौड़े छेदों वाला है, तद्यपि उससे कुछ छूटता नहीं। विश्व-नियम का जाल सर्वत्र फैला है और उसके छेद चौड़े-चौड़े हैं, परंतु उनमें से कुछ निकलकर बाहर नहीं जा सकता। कर्म-सिद्धांत का जाल सभी प्राणियों में फैला है। उसके छेद बड़े-बड़े हैं। इसका अर्थ है कि मनुष्य पूरा स्वतंत्र है कि वह चाहे अच्छा करे और चाहे बुरा करे, उसे कोई रोकने वाला नहीं है। परंतु कर्म कर लेने के बाद उनके फलों से बचा नहीं जा सकता। यह विश्व-नियम का जाल ऐसा है कि इससे निकलकर कोई बच नहीं सकता। बचने का उपाय है पहले ही अपने कर्मों का सुधार कर लिया जाये।

74. शासक मृत्युदंड न दें

1. *If the people do not fear death:*
   how can one frighten them with death?
   But if I keep the people constantly
   in fear of death and
   if someone does strange things:
   should I grab him and kill him?
   Who dares do this?

2. *There is always a power of death that kills.*
   To kill instead of leaving killing to this power of death
   is as if one wanted to use the axe oneself
   instead of leaving it to the carpenter.
   Whosoever would use the axe
   instead of leaving it to the carpenter
   shall rarely get away
   without injuring his hand.

अनुवाद

1. *यदि लोग मृत्यु से भयभीत नहीं,*
   तो उन्हें मृत्यु से कैसे डराओगे?
   किंतु यदि मैं लोगों को निरंतर
   मौत के साये में रखूं और
   यदि कोई विचित्र हरकत करे,
   तो क्या मैं उसे पकड़कर मार दूं?
   किसमें दुस्साहस है ऐसा करने का?

2. *मृत्यु की एक सत्ता निरंतर है जो मारती है।*
   अब मारने का काम इस मृत्यु की सत्ता को न देकर,
   हम स्वयं करें
   यह तो ऐसे ही है, जैसे कुल्हाड़ी का प्रयोग हम स्वयं करें,

बजाय इसके कि यह बढ़ई के लिए छोड़ दी जाये।
जो कोई भी कुल्हाड़ी का प्रयोग
बढ़ई के लिए न छोड़कर स्वयं करेगा,
वह अपना हाथ काटे बिना न रहेगा।

भावार्थ—1. अगर लोग मृत्यु से नहीं डरते, तो आप उन्हें मृत्युदंड से कैसे डराओगे? परंतु यदि आप मृत्युदंड की धमकी देकर लोगों को सदैव मृत्यु के साये में रखें, परंतु इतने पर भी कोई हत्यादि दुष्कर्म करे, तो क्या आप उसे पकड़कर मार डालें? ऐसा करने का दुस्साहस किसमें है?

2. प्राणियों को मारने की एक नित्य सत्ता है, जिसे हम मौत कहते हैं। यदि मारने का काम उसी के दायित्व में न रखकर हम स्वयं लोगों को मारने लगें, तो यह वही बात होगी कि बढ़ई के हाथ से कुल्हाड़ी छीनकर हम स्वयं उसका प्रयोग करने लगें। कोई भी मनुष्य कुल्हाड़ी का प्रयोग बढ़ई के ही लिए न छोड़कर स्वयं करता है, तो वह अपने हाथ-पैर काटे बिना न रहेगा।

भाष्य—जेम्स लेगी इस सूत्र की टिप्पणी में लिखते हैं, "यह अध्याय शासकों द्वारा दिये जाने वाले मृत्युदंड की अपर्याप्तता को प्रदर्शित करता है और शासकों को रोकता है कि वे मृत्युदंड न दें।"[1]

यदि लोग मृत्यु से भयभीत नहीं, तो उन्हें मृत्यु से कैसे डराओगे? संत लाओत्ज़े शासकों से पूछते हैं कि यदि लोग मृत्यु का भय नहीं करते हैं, तो आप उनको मृत्युदंड का भय कैसे दे सकते हो? अतएव मृत्युदंड का भय देकर लोगों को अपराधी होने से नहीं बचाया जा सकता है।

किंतु यदि मैं लोगों को निरंतर मौत के साये में रखूं और यदि कोई विचित्र हरकत करे, तो क्या मैं उसे पकड़कर मार दूं? किसमें दुस्साहस है ऐसा करने का? शासक मृत्युदंड की धमकी देकर यदि लोगों को निरंतर मृत्यु के भय में रखे, लेकिन इतना भय देने पर भी कोई चोरी, डाका, हत्या आदि घोर कर्म करता है, तो क्या उसे मार डालना चाहिए? यह तो दुस्साहस है। कुछ लोग लोभ, काम और क्रोध के उद्वेग में होकर अपहरण, डाका, चोरी, व्यभिचार, हत्या आदि दुष्कर्म करते हैं। किंतु शासक तो उद्वेग में नहीं है। वह किसी अपराधी को मृत्युदंड देने का दुस्साहस क्यों करे! इसके लिए ग्रंथकार आगे युक्ति प्रस्तुत करते हैं—

मृत्यु की एक सत्ता निरंतर है जो मारती है। अब मारने का काम इस मृत्यु की सत्ता को न देकर हम स्वयं करें; यह तो ऐसे ही है, जैसे कुल्हाड़ी का

---

1. **The chapter sets forth the inefficiency of capital punishment, and warns rulers against the infliction of it.**

प्रयोग हम स्वयं करें बजाय इसके कि यह बढ़ई के लिए छोड़ दी जाये। जो कोई भी कुल्हाड़ी का प्रयोग बढ़ई के लिए न छोड़कर स्वयं करेगा, वह अपना हाथ काटे बिना न रहेगा।

मृत्यु की सत्ता सब समय है। वह प्राणियों को मारती रहती है। अतएव यह काम उसी के लिए छोड़ देना चाहिए। बढ़ई का काम है कुल्हाड़ी चलाना। यदि हम यह काम बढ़ई के लिए न छोड़कर स्वयं करेंगे, तो अपने हाथ-पैर काट लेंगे। इसी प्रकार मृत्यु का काम है प्राणियों को मारना। यदि हम मौत के लिए यह काम न छोड़कर स्वयं करेंगे तो अपना अहित करेंगे।

संत लाओत्ज़े शासकों से अपील करते हैं कि वे मृत्युदंड न दें। यह उनका संतत्व विचार है। इसके विरोध में लोगों का यह तर्क है कि यदि मृत्युदंड बंद कर दिया जायेगा, तो अपराधी अधिक निडर होकर अपराध करेंगे।

75. शासक दयालुता और सादापन में रहकर प्रजापालन करें

1. *When the people go hungry,*
   this comes from too much tax
   being devoured by the high and mighty:
   therefore the people go hungry.

2. *When the people are hard to lead,*
   this comes from too much meddling
   by the high and mighty:
   therefore are they difficult to lead.

3. *When the people take death too lightly,*
   this comes from life's abundance being sought too greedily
   by the high and mighty:
   therefore do they take death too lightly.
   However, he who does not act for the sake of life,
   he is better than the other to whom life is precious.

अनुवाद

1. *कब लोग भूखे रह जाते हैं?*
   जब शक्तिशाली शासकों द्वारा
   अत्यधिक टैक्स वसूला जाता है,
   अतएव लोग भूखे रह जाते हैं।

2. *कब लोगों पर नियंत्रण करना कठिन होता है?*
   जब शक्तिशाली शासकों द्वारा,
   अत्यधिक हस्तक्षेप किया जाता है,
   अतएव लोगों पर नियंत्रण करना कठिन होता है।

3. *कब लोग मौत को बहुत हलके रूप में लेते हैं?*
   जब शक्तिशाली शासक,

जीवन की सुविधाओं के प्रति अत्यधिक लालची होते हैं।
अतएव लोग मौत को बहुत हलके रूप में लेते हैं।
फिर भी, जो जीवन के लिए उत्सुक नहीं हैं,
वे उनसे उत्तम हैं जो अपने जीवन को अधिक मूल्यवान समझते हैं।

भावार्थ—1. प्रजा कब भूखों मरती है? जब बलवान शासक उनसे अत्यधिक कर लेते हैं। इसलिए प्रजा भूखी रह जाती है।

2. प्रजा पर नियंत्रण करना कब कठिन होता है? जब बलवान शासक प्रजा के निर्वाह-धंधों तथा रहन-सहन में बहुत ज्यादा हस्तक्षेप करते हैं। ऐसी स्थिति में प्रजा पर नियंत्रण करना कठिन होता है।

3. कब लोग मौत को नहीं डरते? जब बलवान शासक अपने जीवन की सुविधाओं के लिए ऐश्वर्य के प्रति बहुत ज्यादा लालची हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में इसके विरोध में लोग उठ खड़े होते हैं, और वे अपने जीवन के लिए परवाह नहीं करते। वे अपनी मौत को हलके में लेते हैं। तो भी वे अच्छे हैं जो जीने के लिए उत्साही नहीं हैं; प्रत्युत जो अपने जीवन को बहुत मूल्यवान इसलिए मानते हैं कि वे ऐश्वर्य इकट्ठा कर सुविधा भोगें, वे निकृष्ट हैं।

भाष्य—बलवान शासकों द्वारा प्रजा से अत्यधिक कर वसूलने से प्रजा दरिद्र होती है और उसका जीवन कष्टमय हो जाता है।

बलवान शासक जब बात-बात में प्रजा पर हस्तक्षेप करते हैं, फिर प्रजा अनियंत्रित हो जाती है।

जब बलवान शासक प्रजा का धन चूसकर अपने भोग-विलास में लीन होते हैं, तब प्रजा मरने-मारने पर तैयार हो जाती है।

इस संदर्भ में ग्रंथकार शासकों को निर्देश करते हैं कि वे प्रजा से अधिक कर न लें, उनके धंधे और जीवन में अधिक हस्तक्षेप न करें और स्वयं सादगी से जीवन व्यतीत कर प्रजा का पालन करें।

ग्रंथकार इस संदर्भ की अंतिम दो पंक्तियों में लिखते हैं, **फिर भी जो जीवन के लिए उत्सुक नहीं हैं वे उनसे उत्तम हैं जो अपने जीवन को अधिक मूल्यवान समझते हैं।** अहंकारी शासक अपने जीवन को अधिक मूल्यवान समझते हैं और उसके भोग-विलास के लिए ऐश्वर्य का बेतहाशा संग्रह करते हैं। जो जनता का ही होता है। अतएव ये अच्छे नहीं हैं। प्रत्युत वे अच्छे हैं जो साधन-हीन होने से जीवन से निराश हैं और अहंकारी तथा भोगी शासक के विद्रोही हैं।

ईसा की इस इक्कीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में नेपाल में यह घटना घटी। वहां राजतंत्र था। बड़े भाई का शासन था। उनके पूरे परिवार तथा खास

संबंधियों की, एक मुख्य कार्यक्रम में जबकि वे एकत्रित थे, सामूहिक हत्या कर दी गयी। दूसरा पक्ष राजगद्दी पर तत्काल बैठा, और प्रजा भड़क गयी। फलत: आसीन राजा गद्दी से उतारकर बाहर फेंक दिया गया और देश प्रजातंत्र हो गया।

बलवान शासक जो अधिक सुविधा और भोग चाहते हैं; वे क्रूर बन जाते हैं। ये गर्हित हैं। इनसे अच्छे वे हैं जो जीवन के साधन से हीन होने से जीवन से निराश हैं और ऐसे विलासी शासक के विरोधी हैं।

उक्त पंक्तियों के भाव व्यक्त करने वाले संत लाओत्ज़े के मन में गरीब जनता के लिए दयापूर्ण पीड़ा है और विलासी शासकों के प्रति सात्विक घृणा है। संत गलत आदमी के लिए भी घृणा नहीं करते। वे सबके प्रति करुणापूर्ण होते हैं। परंतु सत्य कभी-कभी कड़वा हो ही जाता है। शासकों की विलासिता और जनता की दरिद्रता से ग्रंथकार दुखी हैं; इसलिए उनका उक्त सारा कथन करुणापूर्ण ही है।

76. कोमलता और निर्मानता शाश्वत जीवन का पथ है

1. *Man, when he enters life,*
   is soft and weak.
   When he dies
   he is hard and strong.
   Plants, when they enter life,
   are soft and tender.
   When they die they are dry and stiff.

2. *Therefore: the hard and the strong*
   are companions of death;
   the soft and the weak
   are companions of life.

3. *Therefore: when weapons are strong they are not victorious.*
   When trees are strong they are cut down.
   The strong, the great, is below.
   The soft, the weak, is above.

अनुवाद

1. *मनुष्य जब जीवन में प्रवेश करता है,*
   कोमल और कमजोर होता है।
   जब वह मरता है,
   कठोर और सख्त हो जाता है।
   पौधे जब जीवन में प्रवेश करते हैं,
   कोमल और नाजुक होते हैं।
   जब वे मरते हैं
   तब रूखे और कड़े हो जाते हैं।

2. *अतएव,*

कठोर और बहुत बलवान मृत्यु के साथी हैं,
कोमल और निर्बल जीवन के साथी हैं।

3. *अतएव,*
जब शस्त्र तेज होते हैं, लोग विजयी नहीं होते।
जब वृक्ष मजबूत होते हैं, उन्हें काट दिया जाता है।
जो मजबूत है, भव्य है, वह नीचे है।
जो सुकोमल है, निर्बल है, वह ऊपर है।

भावार्थ—1. जन्म-काल में मनुष्य कोमल और दुर्बल होता है; परंतु जब वह मरने के निकट आता है तब कठोर और कड़ा होता है। पौधे भी जब उगते हैं, तब कोमल और दुर्बल होते हैं; परंतु जब वे नष्ट होने के निकट आते हैं, तब सूखे और कड़े हो जाते हैं।

2. अतएव कठोर और अत्यधिक बलवान मौत के साथी हैं, और कोमल तथा दुर्बल जीवन के साथी हैं।

3. इसलिए जब अस्त्र-शस्त्र तेज होते हैं, तब लोग विजय नहीं कर पाते। जब वृक्ष पककर कड़े हो जाते हैं, तब वे काट दिये जाते हैं। जो बलवान और बड़ा है वह नीचे है, और जो कोमल तथा दुर्बल है, वह ऊपर है।

भाष्य—मनुष्य जब जीवन में प्रवेश करता है, कोमल और कमजोर होता है। जब वह मरता है, कठोर और सख्त हो जाता है। पौधे जब जीवन में प्रवेश करते हैं, कोमल और नाजुक होते हैं। जब वे मरते हैं तब रूखे और कड़े हो जाते हैं। अतएव कठोर और बहुत बलवान मृत्यु के साथी हैं; कोमल और निर्बल जीवन के साथी हैं। अतएव जब शस्त्र तेज होते हैं, लोग विजयी नहीं होते। जब वृक्ष मजबूत होते हैं, उन्हें काट दिया जाता है। जो मजबूत है, भव्य है, वह नीचे है। जो सुकोमल है, निर्बल है, वह ऊपर है।

संत लाओत्ज़े ऊपर की सारी बातें, सारे उदाहरण एक ही बात को दृढ़ करने के लिए देते हैं, कि तुम कठोर न बनो, शक्तिशाली न बनो, अपितु कोमल और निर्बल बनो। कोमल बनना तो ठीक है, निर्बल क्यों बनें! संत की भाषा का भाव बड़ा गहरा है। धन है, पद है, प्रतिष्ठा है, अनुगामी हैं, तो ऐसा व्यक्ति अपने को शक्तिशाली मानता है; और जहां अपने को शक्तिशाली माना, वहां कठोर हो जाता है, अहंकारी हो जाता है। फिर उसके मन में निरंतर मनोविकार का ज्वार उठने लगता है। वह प्रतिक्रियाओं से निरंतर भरा रहता है।

याद रखें, शरीर-बल, विद्या-बल, धन-बल, जन-बल, पद-बल, प्रतिष्ठा-बल, अनुगामी-बल, सारे बल हमारे में अहंकार भरते हैं, और हमें कठोर बनाते हैं। सारे उपलब्ध बल क्षणिक हैं, नश्वर हैं और सदा के लिए छूट जाने वाले

हैं; परंतु ये जब आते हैं, तब चुपचाप हमारे में अहंकार भरते जाते हैं और हम अकड़ते जाते हैं। गुरु, महंत, आचार्य, मंडलेश्वर, महामंडलेश्वर, जगद्गुरु आदि शब्दों का झोंका मनुष्य को कितना अकड़बाज बना देता है। यह प्रत्यक्ष है और यह मौत है। कठोर और शक्तिशाली बनने का तात्पर्य है मृत्यु की प्राप्ति। यहां मृत्यु का अर्थ है आध्यात्मिक पतन, मन का प्रतिक्रियाओं तथा विकारों से भरा रहना।

सारी भौतिक शक्तियां जहां तक हमें उपलब्ध हैं, जड़-प्रकृति के निर्मित कार्य-पदार्थ हैं, जिनका अंत पुन: प्रकृति में लीन हो जाना है। उन्हें अपनी मान लेना धोखा खाना है। अतएव उनसे समाज की सेवा करना चाहिए, उन्हें अपनी न मानना चाहिए। जो व्यक्ति सांसारिक बल को अपना न मानकर अ-बल एवं दुर्बल रहता है, वह आध्यात्मिक दृष्टि से महा बलवान हो जाता है; किंतु अत्यंत कोमल रहता है। इसलिए वह जीवन का साथी है, मृत्यु का नहीं। वह शाश्वत आत्मिक जीवन को उपलब्ध होता है, भौतिक जन्म-मृत्यु के प्रवाह को नहीं।

इसलिए संत लाओत्ज़े कहते हैं, **जो मजबूत है, भव्य है, वह नीचे है। जो सुकोमल है, निर्बल है, वह ऊपर है।** जो भौतिक बलवत्ता और भव्यता का अहंकारी है, वह नीचे होता है, मन के नरक में जीता है। और जो सारा अहंकार छोड़कर निर्बल और कोमल बन जाता है, जो समझता है कि मेरा संसार में कुछ नहीं है, वह सारी गरमी से मुक्त होकर ऊपर हो जाता है, परम शांति और मुक्ति के आनंद में जीता है।

तेज शस्त्र-बल से कोई सच्चा विजयी नहीं होता, अपितु विनम्रता और सेवा से विजयी होता है। लौकिक भव्यता से मोक्ष का आनंद नहीं मिलता, किंतु हृदय की पूर्ण निर्हंकारता और कोमलता से मिलता है।

---

77. संत सेवा करते हैं, अपना अधिकार नहीं मानते

1. *The DAO of Heaven: how it resembles the archer!*
He presses down what is high
and raises that which is low.
Whatever has too much he reduces,
whatever does not have enough he completes.

2. *It is the DAO of Heaven*
to reduce what has too much
and to complete what does not have enough.
Man's DAO is not so.
He reduces what does not have enough,
in order to offer it to what has too much.

3. *But who is capable of offering to the world*
that of which he has too much?
Only he who has DAO.

4. *Thus also is the Man of Calling:*
he works and does not keep.
When the work is done he does not tarry with it.
He does not desire to show off his importance to others.

अनुवाद

1. *स्वर्ग का ताओ!*
धनुर्धारी से कितना साम्य है इसका!
वह उठे हुए भाग को नीचे झुकाता है,
और दबे हुए को ऊपर।
जिसके पास ज्यादा है, वह उसे घटाता है।
जिसके पास पर्याप्त नहीं, उसको पूरा करता है।

2. *यही है स्वर्ग का ताओ,*
जिसके पास अतिशय है, उसे घटाता है,
और उन्हें पूरा करता है, जिनके पर्याप्त नहीं है।
आदमी का ताओ ऐसा नहीं है।
वह तो उसका कम करता है जिसके पर्याप्त नहीं,
ताकि उसे दिया जा सके जिसके भंडार है।

3. *किंतु, कौन सामर्थ्य रखता है संसार को देने का*
अपने भंडार में से?
केवल वही जिसके पास ताओ है।

4. *संत की रहनी इसी प्रकार होती है,*
वे कर्म करते हैं, अधिकार नहीं रखते।
जब काम पूरा हुआ, वे उसके साथ रुकते नहीं।
वे दूसरों को अपना महत्त्व दिखाने की कामना नहीं रखते।

भावार्थ—1. स्वर्ग का ताओ धनुर्धारी से समानता रखता है। धनुर्धारी धनुष के उठे हुए दोनों कोनों को झुकाता है, और दबे हुए बीच के हिस्से को उठाता है। ताओ जिसके पास अधिक है उसका कम करता है और जिसके पास काम भर का नहीं है, उसे पूरा करता है।

2. स्वर्ग के ताओ का यही नियम है, अधिक वाले का घटाना और कम वाले का बढ़ाना। मनुष्य का ताओ इस प्रकार नहीं है। वह तो उसका कम करता है जिसके पास पूरा नहीं है और उसको देता है जिसके पास खजाना है।

3. अपने खजाने से निकालकर देने की शक्ति किसके पास है? जिसके पास ताओ है।

4. संत का आचरण ऐसा ही होता है। वे अपना कर्तव्य-कर्म करते हैं, परंतु अधिकार नहीं रखते। काम पूरा होने पर वे उसके साथ अपने को नहीं जोड़ते। वे दूसरों के सामने अपना महत्त्व प्रदर्शित करने की इच्छा नहीं रखते।

भाष्य—स्वर्ग का ताओ, धनुर्धारी से कितना साम्य है इसका! वह उठे हुए भाग को नीचे झुकाता है, और दबे हुए को ऊपर। जिसके पास ज्यादा है वह उसे घटाता है; जिसके पास पर्याप्त नहीं है, उसको पूरा करता है।

जब धनुर्धारी धनुष खींचता है, तब दोनों सिरे के भाग जो लंबे हैं खिंचकर नीचे आ जाते हैं और जो बीच का भाग दबा है वह ऊपर उठकर लगभग गोलाकार हो जाता है। फलत: लंबाई घट जाती है और चौड़ाई बढ़ जाती है। यह केवल उदाहरण है। खास बात यह है, **स्वर्ग का ताओ जिसके पास ज्यादा है, वह उसे घटाता है, जिसके पास पर्याप्त नहीं है, उसको पूरा करता है।**

भौतिक दृष्टि से स्वर्ग का ताओ विश्व-नियम है। विश्व-नियम है परिवर्तनशीलता। इस परिवर्तनशीलता में सांसारिक माया ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर घूमती रहती है। धनी निर्धन हो जाता है और निर्धन धनी हो जाता है। ऊंचे पद पर रहनेवाला सड़क पर आ जाता है और सड़क का आदमी पद पर पहुंच जाता है। बड़े-बड़े राजे-महाराजे तथा पूंजीपति हुए और वे धरती में विलीन हो गये, और जिनका कोई पता नहीं था, वे संसार में चमक गये। चमकने का मतलब है बुझ जाना। यह चमकना-बुझना विश्व का नियम है।

वस्तुत: आध्यात्मिक स्वर्ग का ताओ है विवेक। विवेक यह है कि जिसके पास अधिक है उससे ले लिया जाये और जिसके पास कम है उसको पूरा किया जाये। ऐसी व्यवस्था हो कि आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक सब क्षेत्रों में मनुष्य का समान अधिकार हो और सबकी लौकिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिए शासन और समाज की तरफ से सुविधा हो।

आदमी का ताओ ऐसा नहीं है। वह तो उसका कम करता है जिसके पर्याप्त नहीं है ताकि उसे दिया जा सके जिसके भंडार है। मेहनत करने वाले मजदूरों को कम मिलता है, बीच के दलालों को ज्यादा मिलता है। कलकत्ता में एक जूते बनाने वाले युवक ने कहा, "दिन भर में एक जोड़ा जूता बना पाता हूं। शाम को व्यापारी के यहां दे आता हूं। वह मुझे बहुत कम देकर स्वयं अधिक लाभ कमाता है।" मेहनत करने वाले मजदूर, शिल्पी एवं कारीगर बहुत कम पाते हैं। उनसे खरीदकर बेचने वाले व्यापारी जो दलाल हैं, वे ज्यादा लाभ लेते हैं। धन धनिकों के पास जाता है, सामान्य जनता तंगी ही में रह जाती है।

किंतु, कौन सामर्थ्य रखता है संसार को देने का अपने भंडार में से? केवल वही जिसके पास ताओ है। जिसके पास विवेक है, वही त्याग कर सकता है। वही अपने भंडार से, खजाने से निकालकर दूसरों का सहयोग कर सकता है जिनको आवश्यकता है। अपने भोगों की लालसा जीतकर ही दूसरे की सेवा की जा सकती है।

संत की रहनी इसी प्रकार होती है। वे कर्म करते हैं, अधिकार नहीं रखते। संत अपना कर्तव्य कर्म करते हैं, परंतु किसी कर्म-फल, वस्तु और व्यक्ति पर अपना अधिकार नहीं जमाते। इस प्रकार वे कुछ अपना मानते ही नहीं। उनके पास जो कुछ होता है, वह किसी एक व्यक्ति का नहीं होता, इसलिए वह सबका होता है। संत सेवा करते हैं, अपना अधिकार नहीं मानते।

जब काम पूरा हुआ, वे उसके पास रुकते नहीं। वे दूसरों को अपना महत्त्व दिखाने की कामना नहीं रखते। संत जब कोई काम करते हैं, उसके पूरा हो जाने पर वे उसमें चिपके नहीं रहते कि उसे बताते फिरें कि यह हमने किया है। वे यह इच्छा ही नहीं रखते कि लोग हमारा महत्त्व समझें।

संत का असली धन आध्यात्मिक तृप्ति है। वे उसे बांटते हैं। वे लोगों को आध्यात्मिक तृप्ति का रास्ता बताते हैं, किंतु बदले में कुछ नहीं चाहते। उनकी सेवा लोग स्वत: करते हैं।

संत लाओत्ज़े ताओ के भक्त हैं, विश्वनियम के पक्षधर हैं। विश्वनियम सबको देता है, किंतु स्वयं को गुप्त रखता है। फल, कंद, अन्न, रत्न सब कुछ प्रकृति के नियमों की देन है जिससे सारा जीव-जगत उपकृत है, परंतु नियम अपने को गुप्त रखता है। ग्रंथकार कहते हैं कि संत ऐसे ही होते हैं। वे सेवा करते हैं, किंतु उसका प्रदर्शन नहीं करते।

सेवा का उच्चतम स्वरूप यही है जिसमें बताने और प्रदर्शन करने की इच्छा न हो, किंतु यह तभी होता है जब मनुष्य अपने भौतिक नाम-रूप के प्रति पूर्ण अनासक्त हो। यही मुक्ति है। मुक्त मनुष्य द्वारा की गयी सेवा उच्चतम होती है। इस स्थिति को जो चाहे वह प्राप्त कर सकता है। यही जीवन का परमानंद है।

78. गाली, निंदा और दुर्भाग्य को स्वीकारने वाला संसार का स्वामी है

1. *In the whole world there is nothing softer*
   and weaker than water.
   And yet nothing measures up to it
   in the way it works upon that which is hard.
   Nothing can change it.

2. *Everyone on earth knows*
   that the weak conquers the strong
   and the soft conquers the hard—
   but no-one is capable of acting accordingly.

3. *Thus also spoke the Man of Calling:*
   'Whosoever takes upon himself the filth of the realm,
   he is the lord at the earth's sacrifices.
   Whosoever takes upon himself the misfortune of the realm,
   he is the king of the world.'

4. *True words are as if contrary.*

अनुवाद

1. *संपूर्ण विश्व में पानी से कोमल एवं*
   निर्बल और कुछ नहीं।
   फिर भी, इसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता।
   जिस ढंग से यह कठोर पर काम करता है,
   इसे कोई नहीं बदल सकता।

2. *संसार में सब जानते हैं,*
   कि कमजोर विजय पाता है मजबूत पर,
   और कोमल विजय पाता है कठोर पर,
   किंतु, कोई इसके अनुसार व्यवहार नहीं कर पाता।

3. *संत भी ऐसा ही कहते हैं,*
'वही धरती की यज्ञवेदी का स्वामी होता है,
जो जगत से मिली हुई गाली और निंदा को स्वीकार लेता है।
जो जगत के दुर्भाग्य को अपने ऊपर ले लेता है,
वही संसार का स्वामी है।'

4. *सत्य वचन उलटे लगते हैं।*

भावार्थ—1. पूरी दुनिया में सबसे अधिक कोमल और कमजोर पानी है। तो भी इसकी समता कोई नहीं कर सकता। जिस तरह यह कठोर को तोड़ देता है, इसे कोई नहीं रोक सकता।

2. दुनिया में यह सब जानते हैं कि दुर्बल विजयी होता है बलवान पर और कोमल विजयी होता है कठोर पर। परंतु इसके अनुसार कोई आचरण नहीं करता (अर्थ है कि बहुत कम लोग ऐसा करते हैं)।

3. संत ऐसा ही कहते हैं—जो संसार से मिली हुई गाली तथा निंदा और दुर्भाग्य को अपने ऊपर ले लेता है, वह धरती की यज्ञवेदी का स्वामी होता है और संसार का दयालु पुरुष होता है। सत्य वचन उलटे लगते हैं।

भाष्य—संपूर्ण विश्व में पानी से कोमल एवं निर्बल और कुछ नहीं। फिर भी इसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता। जिस ढंग से यह कठोर पर काम करता है, इसे कोई नहीं बदल सकता। जल कोमल होता है, इसका अनुभव सबको है। निर्बल अत्यधिक, क्योंकि टुटा-टुटा होता है। ऐसा विनम्र कि जिस पात्र में जाता है उसी का आकार ग्रहण कर लेता है। परंतु यह कठोर पत्थर को तोड़ देता है। पत्थर पानी को नहीं तोड़ पाता, परंतु पानी पत्थर को तोड़ देता है। जल जिस प्रकार स्वयं कोमल रहकर कठोर पत्थर को तोड़ देता है, उसके इस गुण को कोई बदल नहीं सकता।

संसार में सब जानते हैं, कि कमजोर विजय पाता है मजबूत पर, और कोमल विजय पाता है कठोर पर; किंतु कोई इसके अनुसार व्यवहार नहीं करता। जल का उदाहरण सबके सामने है। अतएव यह सारा संसार समझ सकता है कि कमजोर और कोमल पानी मजबूत और कठोर पत्थर पर विजय पाता है, उसे तोड़ देता है और रेत बनाकर बहा ले जाता है। फिर भी संसार के लोग कोमल और निर्मानी होकर अहंकारियों पर विजय करने का काम नहीं करते। संत लाओत्ज़े के मन में यह कितनी करुणापूर्ण पीड़ा है—**किंतु कोई इसके अनुसार व्यवहार नहीं कर पाता।** दूसरों की बुराई बताने और अपनी अच्छाई का वर्णन करने में उद्वेग है और इसके परिणाम में आरोप-प्रत्यारोप का न समाप्त होने वाला क्रम है, जिसमें कलह का विस्तार है, परिणाम दुख है और मन में निरंतर उठने वाली प्रतिक्रिया का नरक है। दूसरों की बुराई अपने मन

और वाणी में न लाने से और दूसरों द्वारा दी गयी गालियों और निंदाओं को प्रतिकार-विहीन निर्विकार-भाव से सह लेने से अपना मन प्रतिक्रिया-हीन, पवित्र और शांत रहता है जो आध्यत्मिक स्वर्ग है। इसमें सारे कलह की परिसमाप्ति है और शाश्वत शांति है। फिर भी संसार के लोग ऐसा काम नहीं करते। कोई विरला करता है। जो भी ऐसा करेगा वह दुखों से मुक्त हो जायेगा।

''संत भी ऐसा ही कहते हैं, वही धरती की यज्ञवेदी का स्वामी होता है, जो जगत से मिली हुई गाली और निंदा को स्वीकार लेता है; जो जगत के दुर्भाग्य को अपने ऊपर ले लेता है। वही संसार का स्वामी है। सबको संसार के प्राणी और पदार्थों पर स्वामी बनने की इच्छा होती है, परंतु कोई इनका इच्छानुसार स्थायी स्वामी नहीं हो पाता। परंतु जो स्वामी बनने की इच्छा ही सर्वथा छोड़ देता है, वह महा स्वामी हो जाता है, क्योंकि वह अपने आत्मा का स्वामी हो जाता है। ऐसा मनुष्य संसार के लोगों द्वारा दी गयी गालियों और निंदाओं को निर्विकार भाव से स्वीकार लेता है। वह गाली पाकर गाली नहीं देता, निंदा पाकर निंदा नहीं करता। वह एक गाल में थप्पड़ मारने वाले के सामने अपना दूसरा गाल भी कर देता है कि लो भैया, दूसरे गाल में भी थप्पड़ मार लो। आपको संतोष मिल जाये, मैं तो पहले से संतुष्ट हूं। ऐसा व्यक्ति संसार की यज्ञवेदी का स्वामी होता है—"He is the lord at the earth's sacrifices." कायर मनुष्य ऐसी सहनशीलता का काम नहीं कर सकता। देहाभिमान धारणकर सारा संसार तो कायर बना है। अहंकार घोर कायरता है। पूर्ण निर्मानता वीरता है। पूर्ण अहंकार-शून्य मनुष्य निर्विकार-भाव से प्रतिक्रिया-हीन होकर अपने ऊपर आयी हुई गाली-निंदा को सह सकता है। वस्तुत: उसे सहना नहीं पड़ता। उसे वह सब कुछ लगता ही नहीं।

जो जगत के दुर्भाग्य को अपने ऊपर ले लेता है, वही संसार का स्वामी है। धन न होना, परिजन न होना, अनुगामी न होना, पद न होना, प्रतिष्ठा न होना, प्रसिद्धि न होना, यह सब लोक में दुर्भाग्य माना जाता है। संत इस दुर्भाग्य को स्वीकार लेते हैं। जो है सो है, जो नहीं है, उसकी इच्छा नहीं। जो है, वह भी न रह जाये, तो भी इसकी कोई चिंता नहीं; क्योंकि अंतत: तो कुछ भी साथ में रहने वाला नहीं है। जो कुछ मिला है वह सब भौतिक है, अतएव कूड़ा-कचड़ा है। अपना अस्तित्व तो परम दिव्य है, शुद्ध, असंग, केवल, अद्वितीय, निराधार चेतन है। उसमें भौतिक ऐश्वर्य कहां? अतएव अनैश्वर्य ही अपना परम ऐश्वर्य है। संत दुर्भाग्य को स्वीकार लेते हैं, इसलिए वे संसार के स्वामी हो जाते हैं, महाभाग्यशाली हो जाते हैं।

सत्य वचन उलटे लगते हैं। निर्बल और कोमल बलवान और कठोर पर विजय पाता है; गाली, निंदा और दुर्भाग्य को स्वीकार लेने वाला संसार का

स्वामी है, सब सत्य वचन हैं, सत्य स्थिति को बताने वाले हैं, परंतु संसारी बुद्धि को ये उलटे लगते हैं। संसार के लोग अपने को देह मानते हैं, इसलिए देह और देह संबंधी क्षणिक उपलब्धियों का अहंकार रखते हैं। अहंकार से कठोरता आना स्वाभाविक है, और इन्हीं सब में लोग जीते हैं। यही स्वभाव बन जाता है। इसलिए विनम्रता, कोमलता और अंतत: सबकुछ से असंगता की बात उन्हें उलटी लगती है।

हम आज तक अहंकार में जीते आये हैं। देह और देह संबंधी नाम-रूप में अहंकार करना अनादि अभ्यास है, इसलिए वही सच लगता है। इसलिए जब कहा जाता है कि मिले हुए गाली, निंदा, अपयश, दुर्भाग्य आदि को निर्विकार भाव से स्वीकार लेने वाला विनम्र मनुष्य महान हो जाता है, तब यह बात सामान्य व्यक्ति को उलटी लगती है। परंतु परम सच्चाई यही है। संसार से हार मान लेने वाला ही अजेय होता है।

79. पूरा झुक जाना शांति का साधन है

1. *If one placates great anger*
   and yet there remains anger:
   how could this be good?
   Therefore the Man of Calling adheres to his duty
   and demands nothing of others.

2. *Therefore: whosoever has Life*
   adheres to his duty;
   whosoever does not have Life
   adheres to his right.

अनुवाद

1. *जब भारी वैर शांत हो जाता है,*
   तब भी थोड़ा वैर शेष रह जाता है;
   इसे संतोषजनक कैसे कहा जा सकता है?
   अतएव, संत अपने कर्तव्य से जुड़ते हैं,
   और दूसरे से कुछ आशा नहीं रखते।

2. *अतएव,*
   जिसमें जीवन है वह अपना कर्तव्य निर्वहन करता है,
   जिसमें जीवन नहीं, वह अधिकार चाहता है।

भावार्थ—1. जब बड़ा वैर शांत हो जाता है, तब भी थोड़ा वैर रह जाता है। इस स्थिति को संतोषजनक नहीं माना जा सकता। इसलिए संत अपना दोष स्वीकारते हैं। वे दूसरों से यह आशा नहीं करते कि वे भी अपने दोष स्वीकारें।

2. इसलिए जिसमें जीवन है, वह अपने दोष देखकर निकालता है और सेवा करता है। जिसमें जीवन नहीं है, पत्थर जैसा कठोर है; वह केवल अधिकार का भूखा रहता है और दूसरे के दोषों को उछालता है।

भाष्य—जब भारी वैर शांत हो जाता है, तब भी थोड़ा वैर शेष रह जाता है। इसे संतोषजनक कैसे कहा जा सकता है? अतएव, संत अपने कर्तव्य से जुड़ते हैं, और दूसरे से कुछ आशा नहीं रखते। सारे वैर न-समझी के परिणाम

हैं। वे समय से समझ जाने पर समाप्त हो जाते हैं। भारी वैर है, और समय आने पर शांत हो गया है, यदि उसमें कुछ शेष रह गया है, तो वह ठीक नहीं है, संतोषप्रद नहीं है। जो संत-स्वभाव के लोग हैं; वे अपने कर्तव्य से जुड़ते हैं। वह कर्तव्य क्या है? सारा दोष अपने ऊपर ले लेना। दूसरे पक्ष पर दोष बिलकुल न मढ़ना, अपितु पूरा-का-पूरा अपना ही दोष मानकर पूर्ण विनम्र हो जाना। ऐसा पूर्ण विनम्र व्यक्ति दूसरे से कुछ पाने की आशा नहीं रखता। पूर्ण विनम्र मनुष्य को अपना पक्षधर किसी को बनाना नहीं पड़ता। दुर्बल मन का आदमी दूसरों पर दोष मढ़ता है और विवेक में सबल आदमी सारा दोष अपने ऊपर ले लेता है।

किसी से विवाद है। अगला मनुष्य बड़ा ही क्रूर है, आप सारा दोष अपने ऊपर स्वीकार कर पूरा विनम्र हो जायें, वह अपने आप शांत हो जायेगा। हमारा विरोधी राक्षस नहीं है। सबके भीतर देवत्व तथा असुरत्व है। अपना देवत्व बढ़ाने से अन्य का देवत्व भी बढ़ने लगता है।

सारा दोष अपने ऊपर ले लेना बड़े वीर का काम है। यह काम कायर नहीं कर पायेगा। याद रखो, पूर्ण निर्मान होकर ही आत्मकल्याण और दूसरों की सेवा कर सकते हो। कलह करने के लिए गुटबंदी करना पड़ता है; समझौता के लिए, सुलह के लिए तो पूरा झुक जाने की आवश्यकता है। सद्‌गुरु कबीर की यह वाणी यदि चरितार्थ करें, "कबीर हम सबते बुरे, हमते भल सब कोय।" फिर कौन-सी समस्या रह जायेगी? अतएव ग्रंथकार कहते हैं कि संत अपने कर्तव्य में जुड़ते हैं। वे दूसरों से कोई आशा नहीं रखते कि वे झुकें तब मैं झुकूं, अथवा कोई मेरा समझौता करा दे। पूर्ण निर्मानता के बाद किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ती।

अतएव, जिसमें जीवन है, वह अपना कर्तव्य निर्वहन करता है; जिसमें जीवन नहीं, वह अधिकार चाहता है। जिसमें निज दोष दर्शन है, विनम्रता है, जो कलहप्रिय नहीं है, शांति-इच्छुक है, शांतात्मा है; उसमें जीवन है। वह अपने कर्तव्य का निर्वाह करता है। पूरा झुक जाने वाला अपना कर्तव्य पालन करता है। विनम्र सेवापरायण और शांतात्मा में ही जीवन है।

जिसमें जीवन नहीं है वह अधिकार चाहता है। जिसका जीवन अहंकार से भरा है, जो भोग-परायण है, जो दूसरों के दोषों को उछालता है, कलहप्रिय है, उसके पास जीवन नहीं है। वह पथरीली जमीन की तरह है, अकड़बाज है। ऐसा आदमी अधिकार चाहता है।

शांति-इच्छुक को चाहिए कि वह अधिकार की लालसा छोड़कर कर्तव्यपरायण बने। अपने को उठाना है तो पूरा झुक जाये।

८०. छोटे और शांतिप्रिय राज्य

1. *A country shall be small*
   and its populace small in number.
   Implements that multiply men' s strength
   shall not be used.
   People are to take death seriously
   and shall not travel far away.

2. *Even though there be ships and carriages*
   no-one shall travel in them.
   Even though there be armour and weapons
   no-one shall employ them.

3. *Let the people tie knots in ropes*
   and use them instead of script.

4. *Make their food sweet*
   and their garments beautiful,
   their dwellings peaceful and
   their customs joyful.

5. *Neighbouring countries may be within eyesight*
   so that one can hear the cocks crow and the dogs bark
   on either side.
   And yet shall people die at great age
   without having travelled hither and thither.

अनुवाद

1. *एक छोटा सा देश हो,*
   और उसकी आबादी थोड़ी हो ।
   आदमी की शक्ति को बढ़ाने वाले यंत्रों का
   प्रयोग वहां न हो।

लोग मौत के प्रति संवेदनशील हों,
और लंबी दूरी की यात्रा न करें।

2. यद्यपि वहां विशाल नावें और वाहन हों,
कोई उनमें यात्रा न करे।
यद्यपि वहां कवच और शस्त्र हों,
कोई उनका उपयोग न करे।

3. लोगों को रस्सी में गांठ लगाने दें
और गणना में प्रयोग करने दें,
लिखने की अपेक्षा।

4. अपने भोजन में रस लें,
और अपनी पोशाकें सुंदर बनायें,
अपने घर शांतिपूर्ण रखें
और अपने रीतिरिवाजों का आनंद लें।

5. पड़ोसी राज्य भले ही नजरों के सामने हों,
यहां तक कि एक दूसरे के मुरगों की कुकुडूं कूं और
कुत्तों की भौं-भौं सुनाई दे दूसरी तरफ,
और लोग बड़ी लंबी आयु जीकर मरें,
बिना इधर-उधर आये-गये।

भावार्थ—1. देश छोटा हो, उसकी जनसंख्या छोटी हो। मनुष्य की सुविधा बढ़ाने वाली मशीनों का प्रयोग वहां न हो। लोग मृत्यु को गंभीरता से समझें। अतएव लोग दूर-दूर की यात्रा न करें।

2. यद्यपि वहां बड़ी-बड़ी नावें और वाहन हों, तद्यपि लोग उनमें यात्रा न करें। यद्यपि वहां कवच और अस्त्र-शस्त्र हों, तद्यपि कोई उनका उपयोग न करे।

3. लोग लिखने-पढ़ने के चक्कर में न पड़ें, प्रत्युत गणना के लिए रस्सी में गांठें लगाकर काम चला लें।

4. अपने भोजन में रस लें और अपने पहनावे को सुंदर बनावें। अपने घर का वातावरण शांतिपूर्ण रखें, और अपने रस्मोरिवाज का आनंद लें।

5. पड़ोसी राज्य दिखायी दें, वे आमने-सामने हों, और मुरगों की कुकुडूंकूं तथा कुत्तों की भौं-भौं आवाज एक दूसरे को सुनायी दें। लोग लंबी आयु तक जीकर मरें, किंतु एक दूसरे देश में जाने की आवश्यकता न समझें।

भाष्य—संत लाओत्ज़े का आदर्श राज्य ऊपर आप पढ़ चुके हैं। वे छोटे-छोटे राज्य के पक्षधर हैं, जिनमें बड़ी राजनीति और बड़ी सेना का प्रपंच न खड़ा हो, जो जनता का अहित करनेवाला है। वे चाहते हैं कि अधिक जनसंख्या न हो। अधिक जनसंख्या में मारामारी अधिक बढ़ती है, हर प्रकार की गंदगी बढ़ती है।

सुविधाजनक मशीनें बढ़ती हैं तो मनुष्य सुविधा-भोगी, आलसी और रोगी होता जाता है। इसलिए ग्रंथकार सुविधा देने वाली मशीनों का प्रयोग करना अच्छा नहीं मानते हैं। वे कहते हैं कि दूर-दूर की यात्रा करने की भी आवश्यकता नहीं है। लंबी यात्रा कर यहां-वहां भटकने से चंचलता बढ़ने के सिवा क्या होता है? मृत्यु को गंभीरता से लेना चाहिए। मृत्यु की याद रखने से मनुष्य पाप से बचा रहता है। श्री निर्मल साहेब ने कहा है, ''मरना है जब अवश्य, मोहब्बत करना झूठा। करिये भजन विचार, विषय से रहिए रूठा।''

ग्रंथकार का शायद यह भाव हो कि मृत्यु की बात गंभीरता से लो, अतएव लंबी यात्रा न करो। यात्राओं में अनेक दुर्घटनाओं की संभावना रहती है। नावकाएं और गाड़ियां भले बड़ी-बड़ी खड़ी हों, परंतु उनसे यात्रा करने की इच्छा न रखें।

ग्रंथकार युद्ध के विरोधी हैं। वे कहते हैं कि अपने छोटे राज्य में कवच हों, अस्त्र-शस्त्र हों, परंतु उनका प्रयोग न किया जाये। युद्ध से अपने और दूसरे, सबका अहित होता है।

लिखाई-पढ़ाई तथा सभ्यता-संस्कृति का विस्तार होने पर मनुष्य चालाक, धूर्त और धोखेबाज होते जाते हैं। ग्रंथकार लिखते हैं कि बहुत पढ़ाई-लिखाई के चक्कर में न पड़ो। गणना करने की आवश्यकता हो तो रस्सी में गांठें लगाकर गणना करने का काम कर लो। शिक्षा जितनी बढ़ेगी, एक दूसरे को धोखा देने का काम उतना बढ़ेगा। अतएव मनुष्य पढ़ाई-लिखाई के चक्कर में न पड़कर प्रकृति के निकट निवास करे और मेहनती, सरल, सत्यपरायण, सेवाभावी तथा शांतिप्रिय रहे।

भोजन सादा हो और उसमें रस लें। स्वाभाविक भोजन का स्वाद उत्तम होता है। मिर्च-मसालों से रहित सब्जी रहती है तब सब्जी का स्वाद मिलता है, किंतु मिर्च-मसाले मिला देने पर सब्जी का स्वाद नहीं मिलता, अपितु मिर्च-मसाले का स्वाद मिलता है जो हानिकर है। अपना परिधान सुंदर और साफ रखें।

घर का वातावरण शांत रखें। घर में कलह न हो। कोई ऊंची आवाज में न बोले। घर के सदस्यों में परस्पर मधुर बरताव हो। घर और परंपरा के रीति-रिवाज होते हैं, त्योहार और उत्सव होते हैं, उनमें आनंद लें।

पड़ोसी राज्य सामने है। वहां के मुरगों की बांग तथा कुत्तों के भौंकने की आवाज सुनायी पड़ती है, परंतु वहां जाने की आवश्यकता नहीं है। आपस में आने-जाने की आदत बनाकर उपद्रव न बढ़ावें। जहां हैं, शांतिपूर्वक रहें और लंबी आयु तक जीकर मरें।

जेम्स लेगी लिखते हैं कि ऐसे छोटे और शांत राज्यों के शासक लाओत्ज़े अपने अनुसार साधु-स्वभावप्रिय चाहते थे।

रिचर्ड विल्हम ने इस अध्याय की टिप्पणी में लिखा है, ''चीन के साहित्य में उस स्वर्णिम युग की बहुत चर्चा है जिसमें मनुष्य प्रकृति की ओर लौटता है, और जिसको लाओत्ज़े ने भी अपना आदर्श माना है। उसी भावना को व्यक्त करने हेतु एक सुंदर काल्पनिक कथा **'युवान मिंग'** द्वारा गढ़ी गयी है, जिसे नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

चीनी सम्राट **'ताइ-युवान'** के समय में **'वू लिंग'** नामक स्थान पर एक मछुआरा रहता था। एक दिन वह अपनी नाव लेकर नदी की धारा के विपरीत यात्रा पर निकल पड़ा। बहुत दूर निकल जाने पर उसे नदी के दोनों ओर सघन वन दिखायी पड़ा, अत्यंत सघन और विशाल वन! उस वन में वृक्ष पुष्पों से लदे हुए थे, और उनकी पंखुड़ियां सुगंधित घास पर बिखरी हुई थीं। मछुआरा यह सब देखकर आश्चर्य में पड़ गया। किंतु उसने अपनी यात्रा जारी रखी। वह देखना चाहता था कि इस वन का विस्तार कहां तक है।

वन के अंतिम छोर पर उसे एक पर्वत दिखायी दिया। उसमें से नदी बहती थी। एक संकीर्ण प्रवेश-द्वार से पर्वत के भीतर जाने का रास्ता था। जो कि प्रकाश से नहाया हुआ जान पड़ता था। मछुआरा उसी से भीतर प्रवेश किया। कुछ दूर तक सीधे चला। थोड़ा आगे चलने पर मार्ग प्रशस्त हो गया और वहां से उस पार विस्तृत भूमि-क्षेत्र दिखायी पड़ा।

साफ-सुथरे छोटे-छोटे घर तथा व्यवस्थित मकान वहां की उर्वर भूमि पर बने थे। मीठे पानी से भरी जमीन थी। सभी रास्ते एक दूसरे से मिलते हुए निकलते थे। वहां सभी प्रकार के पौधे तथा फलदार वृक्ष थे। मुरगों और कुत्तों का स्वर गांव-गांव सुनाई पड़ता था। पुरुष और महिलाएं खेत में काम करते थे, बिलकुल वैसे जैसे हम लोग करते हैं। बच्चे और वृद्ध भी शांति से अपने कामों में लगे हुए थे।

जब उन लोगों ने हमारे मछुआरे को देखा तो उनके आश्चर्य की सीमा न रही, और वे लोग उससे पूछताछ करने लगे। जब उसने अपनी बात बतायी, तो उन्होंने उसे पीने के लिए पेय पदार्थ दिया और उसकी आवभगत की। गांववालों को जानकारी हो गयी थी, अतएव सभी लोग उससे मिलने के लिए उत्सुक थे। उन्होंने उसे अपनी कथा सुनायी कि किस प्रकार बहुत समय पूर्व राज्य की

बिगड़ती स्थिति के कारण उनके पूर्वज अपने स्थान को छोड़कर स्त्री, बच्चों और बूढ़ों सहित यहां आ बसे थे। तब से कोई वापस नहीं गया। अतएव उन्हें बाहरी दुनिया की जानकारी नहीं है। उन्होंने राजा के विषय में पूछा। वह तमाम राजवंश जिनका शासन बीत चुका था, उनको जानकारी नहीं थी। मछुआरा जितना जानता था, उन्हें बताया और वे सब उत्सुकतापूर्वक सुनते रहे। इसी प्रकार कई दिन मनोरंजन और आवभगत में बीते। जब उसके विदा होने का समय आया, तब गांववालों ने सोचा कि बाहरी दुनिया के लोगों को यहां की जानकारी देना उचित नहीं है।

अंततः मछुआरा उस स्थान से विदा हुआ। वापस नदी पर आया और अपनी नाव पर बैठा। उसने उस जगह को एवं उसके आसपास को ठीक से ध्यान में रखा था। वापस राजधानी आकर उसने प्रशासक को सूचित किया। राजा ने मछुआरे की जानकारी के विश्वास पर दूतों को वहां भेजा, किंतु वे लोग रास्ता ही भटक गये।

यह सच है कि आगे चलकर एक और बुद्धिमान व्यक्ति ने उस स्थान को देखने का साहस किया, किंतु वहां तक पहुंचने के पूर्व ही वह रोगग्रस्त होकर मर गया। तब से किसी ने उधर जाने के विषय में सोचा ही नहीं।

ऊपर छोटे सुखद राज्य का काल्पनिक रूप आपने पढ़ा। कोई किसी को न छेड़े, तो ऐसे छोटे-छोटे राज्य ठीक ही हैं। परंतु इन्हीं मनुष्यों में कुछ जहरीले होते हैं और वे लोगों को दबाकर राजा बन जाते हैं और इसके बाद वे दूसरे राज्यों पर हमलाकर तथा घोर रक्तपात कर उन पर अधिकार जमा लेते हैं।

आज भारत में अट्ठाइस प्रदेश हैं जो केंद्रशासित होते हुए काफी स्वतंत्र हैं और सात केंद्रशासित राज्य हैं। ये कुल पैंतीस राज्य यदि सर्वथा स्वतंत्र हों, तो परस्पर मारामारी शुरू हो जायेगी। अच्छा है कि ये सब केन्द्र के अधीन हैं और सेना केवल केंद्र के पास है। अतएव राज्यों में मारामारी नहीं है। पूरा भारत केंद्र से शासित है और पूरे देश में शांति है, एकता है।

81. संत अपरिग्रही, सेवा-परायण और कलह-रहित होते हैं

1. *True words are not beautiful,*
   beautiful words are not true.
   Competence does not persuade,
   persuasion is not competent.
   The sage is not learned,
   the learned man is not wise.

2. *The Man of Calling does not heap up possessions.*
   The more he does for others,
   the more he possesses.
   The more he gives to others,
   the more he has.

3. *The DAO of Heaven is 'furthering without causing harm'.*
   The DAO of the Man of Calling is to be effective without quarreling.

अनुवाद

1. *सत्य वचन मनोहर नहीं होते,*
   मनोहर वचन सत्य नहीं होते।
   योग्यता स्वयं को जनाती नहीं,
   स्वयं को जनाना योग्यता नहीं।
   संत ज्ञानी नहीं होते,
   ज्ञानी संत नहीं होते।

2. *संत धन-संपत्ति का संग्रह नहीं करते।*
   जैसे-जैसे वे दूसरों के लिए करते हैं,
   वैसे-वैसे वे समृद्ध होते जाते हैं।
   वे लोगों को जितना देते हैं
   उनका उतना ही बढ़ता है।

3. स्वर्ग का ताओ है,
बिना हानि पहुंचाये प्रोत्साहन देना।
संत का ताओ है बिना कलह के उपयोगी होना।

भावार्थ—1. सत्य वचन मीठे नहीं होते और मीठे वचन सत्य नहीं होते। योग्यता में अहंकार नहीं और अहंकार में योग्यता नही। संत ज्ञानी नहीं होते हैं और ज्ञानी संत नहीं होते।

2. संत अपने व्यक्तिगत जीवन के लिए संपत्ति संग्रह नहीं करते। वे दूसरों की जैसे-जैसे सेवा करते हैं, वैसे-वैसे स्वयं संपन्न होते जाते हैं। वे दूसरों को जितना देते हैं उतना उनका बढ़ता है।

3. विश्व-नियम बिना क्षति किये लाभ पहुंचाता है, और संतों का आचरण बिना कलह किये लोगों का कल्याण करता है।

भाष्य—सत्य वचन मनोहर नहीं होते, मनोहर वचन सत्य नहीं होते। यह कटु सत्य है कि अधिकतम सत्य वचन कड़वे लगते हैं। काम-कीचड़ है, सांसारिक वासनाएं नरक में डुबानेवाली हैं; यह वचन विषयी मन को अच्छा नहीं लग सकता। मिली हुई निंदा तथा गाली निर्विकार भाव से स्वीकार लो और विवाद की जगह पर सारा दोष अपना ही मान लो, यह वचन अहंकारी को कैसे अच्छा लगेगा? कोई देवी-देवता और ईश्वर न आपको दुख देने वाला है और न आपका कल्याण करनेवाला है। आपके दुख-सुख तथा बंधन-मोक्ष के लिए आप स्वयं उत्तरदायी हैं, यह वचन परम सत्य है, परंतु यह लोगों को कड़वा लगता है; क्योंकि वे ईश्वर का नाम मात्र लेकर भोग-मोक्ष का लाभ लेना चाहते हैं। अमुक नाम तथा मंत्र जपने और अमुक नदी में नहाने मात्र से भोग-मोक्ष मिलते हैं, यह वचन मीठा लगता है, किंतु केवल धोखा देनेवाला है।

अवतारवाद, पैगंबरवाद, चमत्कार, अलौकिकता की बातें मनोहर हैं, किंतु असत्य हैं। आत्मज्ञान और आत्मशोधन ही कल्याणकारी है, यह सत्य है, परंतु कड़वा है। हम सत्य बोलें, किंतु जितना संभव हो उसे मीठा करके बोलें, यही चारा है। मीठा असत्य न बोलें। वस्तुतः सत्य जब समझ में आ जाता है, तब वह परम मीठा लगता है। सत्य के समान मीठा कुछ है ही नहीं।

योग्यता स्वयं को जनाती नहीं, स्वयं को जनाना योग्यता नहीं। हनुमान जी अपने बल को भूले रहते थे, यह कथा है। इसका अर्थ है कि वे निर्हंकारी थे। वे अपने बल का घमंड नहीं रखते थे। सच्ची योग्यता का लक्षण है कि अपनी योग्यता का स्मरण न रहे। अपनी ऊंचाई न समझना अपना बड़प्पन है। अपने को साधारण समझना महानता है। जो मनुष्य स्वयं को योग्य मानता है वह अयोग्य है। योग्य व्यक्ति अपनी योग्यता का प्रदर्शन नहीं करता और प्रदर्शन करने वाला योग्य नहीं होता। रहीम कवि कहते हैं—

बड़े बड़ाई न करें, बड़े न बोलें बोल।
रहिमन हीरा कब कहे, लाख टका मेरा मोल॥

संत ज्ञानी नहीं होते, ज्ञानी संत नहीं होते। संत का अर्थ है सत्य में स्थित व्यक्ति। परम सत्य अपना अस्तित्व है, स्व-स्वरूप है, आत्मा है, स्व है। जो स्व में स्थित है वह संत है। ज्ञानी उसे कहते हैं जो बहुत शास्त्रों को जानता है। ज्ञानी का लक्षण है संसार की बहुज्ञता से संपन्न होना। ज्ञानी अपने अर्जित ज्ञान के खजाने में ही उलझ-पुलझ जाता है। वह संत नहीं होता। वह निर्विकल्प समाधि में जाकर आत्मलीन नहीं हो पाता। जो निर्विकल्प समाधि में पहुंचा आत्मलीन संत है, वह सांसारिक ज्ञान का खजाना नहीं इकट्ठा कर पाता। वह तो जो पहले से जानता है वह भी भूलता जाता है। कबीर साहेब की भाषा में कहें तो होगा—

समुझि बूझि जड़ हो रहै, बल तजि निर्बल होय।
कहहिं कबीर ता संत का, पला न पकरै कोय॥

(बीजक, साखी 167)

सारा ज्ञान भूलकर निश्शब्द अवस्था, परमशांति अवस्था आती है। जहां देखना, सुनना, जानना बंद हो जाता है वह एकांत शांत, अकेलापन संत के होने की दशा है।

संत धन, संपत्ति का संग्रह नहीं करते। जैसे-जैसे वे दूसरों के लिए करते हैं, वैसे-वैसे वे समृद्ध होते जाते हैं। वे लोगों को जितना देते हैं, उनका उतना ही बढ़ता है। सेवापरायण की बुद्धि आत्म-संतुष्ट होती है। संत सेवापरायण होते हैं, इसलिए वे अपने लिए संग्रह नहीं करते। उनका संग्रह तो सेवा है। वे जितना दूसरों की सेवा करते हैं स्वयं संपन्न होते जाते हैं। देने वाले का बढ़ता है, यह प्राकृतिक नियम है। कबीर साहेब की भाषा में कहें तो, ''वसंत ऋतु ने याचना की, तो वृक्षों ने हर्षित होकर अपने सारे पत्ते उसे दे दिये। इसलिए सारे वृक्षों में नये-नये पत्ते आ गये। सच है, दिया हुआ दूर नहीं जाता, अपितु अधिक मिलता है।''

ऋतु वसंत याचक भया, हर्षि दिया द्रुम पात।
ताते नव पल्लव भया, दिया दूर नहिं जात॥

(साखी ग्रंथ)

स्वर्ग का ताओ है, बिना हानि पहुंचाये प्रोत्साहन देना; संत का ताओ है बिना कलह के उपयोगी होना। स्वर्ग का ताओ है विश्व-व्यापी नियम। वह किसी को हानि नहीं पहुंचाता, अपितु सबको आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक उन्नति में सहयोग देता है। पृथ्वी, जल, हवाएं, सूरज, चांद, तारे, सारी सत्ता हमारी सभी प्रकार की उन्नतियों में सहयोगी हैं, यदि हम उनका सदुपयोग करें।

प्रकृति से सहयोग लेकर जीवन-निर्वाह करें और आध्यात्मिक साधना करके परमशांति में विश्राम लें। संत का ताओ है विवेक, वह कलह नहीं करता। संत कलह नहीं करते, वे सबके लिए उपयोगी होते हैं। जो कोई उनसे प्रेरणा लेना चाहे वह प्रेरणा लेकर अपना कल्याण करे।

कलह का कारण है भोग और सम्मान पाने की लालसा। जो व्यक्ति इनके लिए जितना अधिक महत्त्वाकांक्षी होता है, वह उतना अधिक कलह करता है। भोग और सम्मान पाने की लालसा छोड़ देना ही संतत्व है। संतत्व संत-वेष नहीं है, अपितु पूर्ण निष्काम दशा है। जो व्यक्ति जितना निष्काम होता जाता है, वह उतना कलह-रहित होता जाता है। पूर्ण निष्काम व्यक्ति पूर्ण कलह-रहित होता है। पूर्ण कलह-मुक्त जीवन स्वर्ग-सुख एवं मोक्ष-सुख है।

संदर्भ ग्रंथ

अंग्रेजी ग्रंथ

1. **Tao Te Ching : The Book of Meaning and Life**
   Translation and Commentary by Richard Wilhelm.
   Translated into English by H.G. Ostwald.
   Arkana Penguin Books England, 1989.
2. **Tao Teh Ching :**
   Translation and Commentary by James Legge.
   Dover Publication Incorporation Mineola, New York, 1997.
3. **Lao Tzu/Tao Teh Ching :**
   Translated by Dr. John C.H. Wu edited by Paul K.T. Sih.
   St. John's University Press, New York, 1980 edition.
4. **The Wisdom of Laotse** by LinYutang.
5. **The Sayings of Lao Tzu** by Lionel Giles, London, 9th impression, 1950.
6. **The Tao Teh Ching of Lao Tzu**
   The Sacred Books of the East Vol. XXXIX
   Edited by F. Maxmuller
   Dover Publications, New York, 1962.
7. **The Book of Lao Zi**
   Translated by He Guanghu, Gao Shining.
   Foreign Languages Press, Beijing, 1995 publication.
8. **Ho-Shong-Kung's commentary on Lao-Tse**
   Translated and annotated by Eduard Erkes.
   Artibus Asiae Publishers, Ascona, Switzerland, 1955.

9. **Two Visions of the Way : Alan-Leung-Chan.**
A study of the Wang Pi and the Ho-Shong-Kung Commentaries on the Lao-Tzu

हिन्दी ग्रंथ

1. ताओ उपनिषद, (भाग I-VI)
ओशो कम्यून, पुणे से प्रकाशित।
2. दीप त्रिवेदी कृत लाओत्ज़े चेतना इन्स्टीट्यूट फॉर मैनेजमेंट ऑफ सेल्फ, अमदाबाद, गुजरात से प्रकाशित।

मंगल-कामना

इस पुस्तक की पूर्ण प्रकाशन-सेवा इंजीनियर **श्री नवल किशोर सिंह,** प्रीतमनगर, इलाहाबाद ने की।

ऐसे शुभ काम के लिए उनकी मंगल-कामना।

मंगल-कामना

इस पुस्तक की पूर्ण प्रकाशन-सेवा इंजीनियर **श्री नवल किशोर सिंह,** प्रीतमनगर, इलाहाबाद ने की।

ऐसे शुभ काम के लिए उनकी मंगल-कामना।